मौद्रिक नीति तथा विनिमय दरों के ढांचे : भारतीय अनुभव*

राकेश मोहन

मैं अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा मोनेटरी अथॉरिटी ऑफ सिंगापुर को वित्तीय समेकन विषय पर यह दूसरी उच्चस्तरीय सेमिनार आयोजित करने के लिए बधाई देता हूँ। यह मंच हम सबको निरंतर विकसित हो रहे अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना के संयोजन पर, विशेषकर जिस रूप में यह एशिया तथा स्वयं एशियाई वित्तीय वृद्धि शेष विश्व को प्रभावित करती है, पर अपने नोटों, विचारों, और दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान का एक अच्छा अवसर प्रदान करता है। आज अंतरराष्ट्रीय वित्तीय परिदृश्य पहले के दशकों की अपेक्षा स्पष्टतया अधिक जटिल हो गया है। हम सभी के देशों में मौद्रिक नीति का निर्माण घरेलू आर्थिक, वित्तीय और मौद्रिक चिंताओं तथा विकसित स्रोतों, अंतरराष्ट्रीय स्थिति जिसे हमे तत्काल समय के आधार पर निकटता से देखना पड़ता है और जिस रूप में यह दिया गया उसे अपनाने की अपेक्षाओं के बीच एक नाजुक संतुलन बनाने का कार्य करना है। तेजी से हो रहे परिवर्तन, जो प्रौद्योगिकीगत परिवर्तन, वित्तीय नवोन्मेष, और वैश्वीकरण वित्तीय बाजारों में लेकर आए हैं, ये भी शक्तियां काम कर रही हैं, उन्हें भी हिसाब में लेना होगा। हम सभी रोचक युग में रह रहे हैं, परंतु केंद्रीय बैंकर के रूप में हमारा कार्य उन नीतियों के कार्यान्वयन के द्वारा, जो मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करती हैं, शायद विश्व को कम रोचक बनाना है।

भारतीय आर्थिक सुधार जो अबसे डेढ़ दशकों से प्रक्रिया में हैं, हमें 8 प्रतिशत से अधिक की सघउ की वृद्धि के पथ पर ले आए हैं। मौद्रिक नीति के निर्माण में हमारी चुनौती यह सुनिश्चित करना है कि ऐसी वृद्धि का पथ सुरक्षित रखा जा सकता है या और तेज किया जा सकता है; जबकि हम एक ऐसा व्यापक आर्थिक परिवेश उपलब्ध कराएं, जिसकी विशेषता मौद्रिक, मूल्य तथा वित्तीय स्थिरता हो। जैसा कि मैं आगे स्पष्ट करूंगा उन चुनौतियों में से जो हम गत डेढ़ दशकों से झेल रहे हैं, एक मुख्य रूपांतरण है - भारतीय अर्थव्यवस्था का बढ़ता हुआ खुलापन। उसके अंतर्गत शेष एशिया के साथ हमारे आर्थिक संबंध व्यापार में निरंतर बने रहे विस्तार के माध्यम से गहरे होते जा रहे हैं और इसलिए वित्तीय संबंधों में भी गहनता आती जा रही है । विश्व में उभरती हुई आर्थिक जन सांख्यिकी तथा एशिया की ओर झुकते हुए भार को देखते हुए हम एशिया में बढ़ते हुए समन्वय की जरूरत तथा हमारी अपनी भूमिका आने वाले वर्षों में किस प्रकार विकसित होगी उसके प्रति अत्यधिक सचेत हैं।

एशियाई देशों में से प्रत्येक देश ने हाल के वर्षों में खुली अर्थव्यवस्था के ढांचे में मौद्रिक नीति के परिचालन में आए महत्वपूर्ण परिवर्तनों का अनुभव किया है। जहाँ हम इसी प्रकार की अनेक समस्याओं को, विशेषकर, अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों के प्रभाव के माध्यम से, जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल की बढ़ती हुई कीमतों को, झेल रहे हैं, वहीं घरेलू गतिविधियाँ भी हमारी अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में, हमारी मौद्रिक तथा व्यापक आर्थिक प्रबंधन के दृष्टिकोणों में भी महत्तर भारांक लेती रही हैं। अतः मैंने सोचा कि सबसे अच्छी बात जो मैं आज कर सकता हूँ यही होगी कि यदि मैं भारत के अनुभव का एक संक्षिप्त विवरण तथा उसका मूल्यांकन चर्चा के लिए प्रस्तुत करूँ क्योंकि हमने एक उत्तरोत्तर बाजारोन्मुखी तथा खुली अर्थव्यवस्था में मौद्रिक ढाँचे तथा विनिमय दर प्रबंधन में महत्वपूर्ण संरचनागत परिवर्तनों को लागू किया है।

I. मौद्रिक नीति के ढांचे में परिवर्तन

1991 में भुगतान संतुलन के संकट के परिणामों के बाद, भारतीय अर्थव्यवस्था के व्यापक क्षेत्र में संरचनागत सुधारों के साथ-साथ स्थिरीकरण का कार्य शुरू किया गया । परिदृश्य में इस नाटकीय परिर्वन ने उस स्वरूप को ही बुनियादी तौर पर बदल दिया जिसमें मौद्रिक नीति ने बनना शुरू किया था।

---

* अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष तथा मोनेटरी अथोरिटी ऑफ सिंगापुर द्वारा एशियाई वित्तीय समेकन विषय पर 25 मई 2006 को सिंगापुर में आयोजित दूसरे उच्च स्तरीय सेमिनार में डॉ. राकेश मोहन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक का व्याख्यान। इस व्याख्यान की तैयारी में माइकल पात्र, हिमांशु जोशी, राजीव दास तथा पार्था रे द्वारा दी गयी सहायता के लिए आभार व्यक्त किया जाता है।

पहला, मौद्रिक प्राधिकरण को दिए गए बहु उद्देश्यों की वास्तविकता को देखते हुए व्यापक आर्थिक उपलब्धि और मूल्य स्थिरता पर महत्तर जोर दिया गया। इस प्रकार समग्र उद्देश्य वृद्धि और मूल्य स्थिरता के बीच निरंतर रूप में प्राथमिकता का पुनर्संतुलन करते हुए एक लचीले और समय के अनुसार बदलते रूप में आगे बढ़ाना था। जो अंतर्निहित व्यापक आर्थिक तथा वित्तीय स्थितियों पर निर्भर रहा। जैसा कि हमने अन्यत्र देखा है, वित्तीय अस्थिरता की भारी कीमत चुकानी पड़ती है, अतः 1990 के बाद के उत्तरार्द्ध से ही मौद्रिक नीतिगत उद्देश्यों में वित्तीय स्थिरता को निरंतर उच्च स्थान दिया गया। भारत में मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता के बीच मजबूत सहक्रियाएं और एक दूसरे की पूरक देखी गई हैं। तदनुसार हमारा यह विश्वास है कि वित्तीय प्रणाली का विनियमन, पर्यवेक्षण और विकास जैसा कि व्यापक रूप में इसकी व्याख्या की गई है, मौद्रिक नीति के वैध दायरे में ही रहता है।

दूसरे, मौद्रिक नीति का परिचालनगत ढांचा 1990 के बाद के दशक के दौरान रूपांतरित हुआ है। 1970 और 1980 के बाद के दशकों की मुख्य विशेषताएं जैसे ब्याज दरों और बैंक ऋण के प्रवाह की दिशा में नियंत्रित हस्तक्षेपों ने 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में व्यापक मौद्रिक नीति संबंधी नियमों या ''प्रतिसूचना के साथ मौद्रिक लक्ष्य के निर्धारण'' का अवसर संक्षिप्त अवधि के लिए दिया। 1990 के बाद के उत्तरार्ध से भारतीय रिज़र्व बैंक ने बहु संकेतक दृष्टिकोण को अपना लिया जिसमें, उच्च बारंबारता और निम्न बारंबारता के संकेतकों का पता लगाया जाता है और उस सूचना का प्रयोग नीति संबंधी परिदृश्य बनाने में किया जाता है।

तीसरे, मौद्रिक नीति के बढ़ते हुए बाजारोन्मुखीकरण ने लिखतों के विकल्प को प्रत्यक्ष लिखतों की ओर से अप्रत्यक्ष लिखतों और बाजार आधारित मौद्रिक नीतिगत उपायों की ओर ज्यादा मोड़ दिया है। सुधारों से पूर्व नकदी प्रारक्षित अपेक्षाओं और सांविधिक चलनिधि अनुपात के रूप में सांविधिक पूर्वक्रयों ने बैंक जमाराशियों का लगभग 70 प्रतिशत आबद्ध कर दिया था, जिसने वित्तीय प्रणाली की लाभप्रदता और मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता को भारी आघात पहुँचाया। सांविधिक चलनिधि अनुपात को 1992 के प्रारंभ में वर्तमान निवल मांग और मीयादी देयताओं के 38.5 प्रतिशत के स्तर से घटाकर 1994 के मध्य में 25 प्रतिशत तक ले आया गया तथा सीआरआर को 1991 में वर्तमान 15 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत तक लाया गया।

चौथे, विभिन्न घटकों में ब्याज दर का अपविनियमन शुरू किया गया। सितंबर 1990 में सभी क्षेत्र-विशेष तथा उपयोग-विशेष ब्याज दरों के निर्धारणों को समाप्त कर दिया गया, सिवाय 2,00,000 रुपए से निम्न के ऋणों के, जिनके लिए न्यूनतम ब्याज दर लागू की गई। अक्तूबर 1994 में, न्यूनतम ब्याज दर का निर्धारण भी समाप्त कर दिया गया और बैंकों की उधार की दरों को मूल उधार दरों (पीएलआर) के निर्धारण की शर्त पर निर्धारण मुक्त कर दिया गया। 2003 में बैंकों को यह सूचित किया गया कि वे निधियों की वास्तविक लागत को पारदर्शितापूर्ण रूप में दर्शाने वाली आधारभूत पीएलआर की घोषणा करें। वर्तमान में बैंकों को बाजार के बेंचमार्क का उपयोग करते हुए तथा अलग-अलग अवधियों के लिए ऋणों और अग्रिमों पर वस्तुनिष्ठ और पारदर्शी रूप में ब्याज दरों का निर्धारण करने के लिए नमनीयता प्राप्त है। आवासीय संपत्ति अर्जित करने तथा टिकाऊ उपभोक्ता मदों की खरीद के लिए तथा ऐसे ही प्रयोजनों के लिए अनेक प्रकार के ऋणों और अग्रिमों पर ब्याज दरों का निर्धारण बिना आधारभूत पीएलआर का सहारा लिए किया जाता है। हालांकि, बचत बैंक की दरें 1995 तक विनियंत्रित होती थीं, परंतु दो सालों से अधिक अवधि वाली मीयादी जमाराशियों पर ब्याज दरों को मुक्त कर दिया गया था। इसके बाद के वर्ष में एक वर्ष से अधिक की अवधिवाली जमाराशियों पर भी ब्याज दरों को मुक्त कर दिया गया। अक्तूबर 1997 तक, 30 दिन से एक साल की अवधि वाली जमाराशियों पर उच्चतम ब्याज दर की सीमा को हटा दिया गया। वर्तमान में, सभी अवधियों के लिए ब्याज दरें मुक्त हैं और 2004 तक मीयादी जमाराशियों की न्यूनतम अवधि को घटाकर 7 दिन की कर दिया गया। बैंक थोक घरेलू मीयादी जमाराशियों पर खुदरा घरेलू मीयादी जमाराशियों पर दी गयी ब्याज दरों से भिन्न ब्याज दरें दे सकते हैं। विदेशी मुद्रा में निर्यात ऋण और अनिवासी जमाराशियों पर ब्याज दरों की उच्चतम सीमा अभी भी बनी हुई है, परंतु वे अंतरराष्ट्रीय ब्याज दरों के साथ पारदर्शी रूप में संबद्ध हैं। रिज़र्व बैंक अपनी वेबसाइट पर जमादरों और उधार दरों के दायरे पर सूचना उपलब्ध कराता है।

इस प्रकार हमने, समय के साथ नियंत्रित ब्याज व्यवस्था से बाजार द्वारा निर्धारित ब्याज दर व्यवस्था में सावधानीपूर्वक चरणबद्ध रूप में अंतरण किया है जिसमें व्यवधानों को न्यूनतम और वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखा गया है। इस दृष्टिकोण ने बाजार के सहभागियों को भी नई व्यवस्था में समायोजन करने के लिए पर्याप्त समय दिया।

मौद्रिक नीति की संप्रेषण सरणियों को सुचारु बनाने तथा नीतिगत परिवर्तनों के संकेतक प्रभावों को बढ़ाने के लिए ब्याज दर का अपविनियमन अनिवार्य है। तथापि, कुछ घटकों में दुरूहताएं विद्यमान हैं, जो संसाधनों के आबंटन में ब्याज दरों की समग्र दक्षता को बाधा पहुँचा रही हैं। इस संदर्भ में, अनेक अल्प बचत योजनाओं तथा भविष्य निधियों पर सरकार द्वारा निर्धारित नियंत्रित ब्याज दरों का विशेष हवाला दिया जा सकता है, क्योंकि वे अक्सर बाजार में उपलब्ध तदनुरूपी लिखतों की ब्याज दरों से उच्चतर हैं तथा इनके साथ कर-रियायतें भी हैं। क्योंकि बैंकों की निधियों के लिए अल्प बचत योजनाओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है अतः बैंकों द्वारा जुटाई गई दीर्घावधिक जमाराशियों पर उपलब्ध कराई जाने वाली ब्याज दरें उस आधार दर के ऊपर के किसी स्तर पर उन्हें उधार की दरें निर्धारित करनी पड़ती हैं जिन्हें प्रतिस्पर्धी बाजार की स्थितियों के अंतर्गत प्राप्त किया गया

होता हैं। वस्तुतः इसे एक ऐसा कारक माना गया है जो उधार की दरों को निम्नमुखी बनी रहने में योगदान करता है, जिसके मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता के लिए कुछ निहितार्थ हैं। यह एक सच्चाई है जिसे हमें मानना चाहिए, तथा हमें सामाजिक सुरक्षा की व्याप्ति तथा देश में पर्याप्त सुरक्षाजाल के बीच रहना होगा। सरकार द्वारा नियंत्रित ये अल्प बचत योजनाएं जिन तक डाकघरों द्वारा व्यापक रूप से पहुंचा जा सकता है, और कुछ वाणिज्यिक बैंकों द्वारा, ये अल्प बचतकर्ताओं को कर-बचत लिखतों तक पैठ बना देते हैं, जिन्हें सुरक्षित और स्थायी माना जाता है। जबकि उनका मौद्रिक संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र को खुट्टल बनाने की दृष्टि से कुछ प्रभाव रखते हैं। शायद उन्हें समग्र वित्तीय स्थिरता में योगदानकारक के रूप में देखा जा सकता है। समय-समय पर इन नियंत्रित ब्याज दरों के बाजार द्वारा निर्धारित ब्याज दरों के समकक्ष लाने के प्रस्ताव किए गए हैं। जहाँ इस योजनाओं में कुछ औचित्यीकरण सचमुच किया गया है, और अधिक प्रगति बेहतर सामाजिक सुरक्षा और पेंशन प्रणालियों के उभर कर आने पर निर्भर करेगा और शायद विपणन योग्य सरकारी लिखतों तक पैठना आसान हो।

अंतिम, सभी क्षेत्र विशेष से जुड़ी वित्तीय सुविधाओं को चरणबद्ध रूप में समाप्त कर दिया गया है, केवल निर्यात ऋण पुनर्वित्त को छोड़कर। एक चलनिधि समायोजन सुविधा, जिसमें, सरकारी प्रतिभूतियों में रेपो/रिवर्स रेपो शामिल हैं, जून 2000 से मौद्रिक नीति की एक प्रमुख परिचालन लिखत के रूप में उभरी है। चलनिधि समायोजन सुविधा दो उद्देश्यों को पूरा करती है। पहला, यह दिन-प्रतिदिन के आधार पर चलनिधि की बिसंगतियों से निपटने के लिए बेहतर नमनीयता प्रदान करती है। दूसरे, यह रात्रिभर के लिए बाजार की ब्याज दरों के लिए दायरा-मार्जिन निर्धारित करती है। बाजार में स्थिरता प्रदान करती है। एलएएफ दरें चलनिनिध प्रबंधन तथा ब्याज दरों का संकेत देने के लिए साधन बनती हैं। एलएएफ की प्रभावशीलता ने मौद्रिक नीति के संप्रेषण की दक्षता में उल्लेखनीय रूप से सुधार किया है।

1990 के बाद के दशक में स्वायत्त मौद्रिक नीति का विकास भी राजकोषीय घाटों के स्वतः मौद्रीकरण के माध्यम से पहले विद्यमान राजकोषीय प्रभुत्व को प्रभावी रूप से हटाने पर निर्भर रहा। 1994-97 की अवधि के दौरान यह आर्थिक सहायता सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के बीच हुए करार के द्वारा चरणबद्ध रूप में समाप्त कर दी गई जिसने मौद्रिक राजकोषीय समन्वय की अद्‌भुत उपलब्धि दर्शाई। दूसरा महत्वपूर्ण संस्थागत बदलाव था - सुधार से पूर्व की अवधि में संचित विदेशी मुद्रा विनिमय दर की गारंटियों के बोझ से लदे भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन-पत्र को मुक्त करना।

वैधानिक परिवर्तन पहले 2000 में और दूसरी बार अब 2006 में किए गए जिनके द्वारा विदेशी मुद्रा, मुद्रा और सरकारी प्रतिभूति बाजारों में परिचालनों की दृष्टि से वित्तीय बाजारों के ऊपर भारतीय रिज़र्व बैंक के विनियामक अधिकार-क्षेत्र को मजबूत किया गया। ये वैधानिक परिवर्तन लिखतों की स्वतंत्रता की दृष्टि से रिज़र्व बैंक की शक्ति को बढ़ाएंगे और इसप्रकार मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता को भी। प्रक्रिया की दृष्टि से हम भी बेहतर पारदर्शिता और परामर्शन की ओर बढ़ रहे हैं, साथ ही नीति संबंधी समीक्षाएं छमाही की बजाए तिमाही कर दी गई हैं। जबाबदेही में इस वृद्धि के साथ-साथ हम मौद्रिक नीति की संप्रेषणीयता में बेहतर पारदर्शिता लाने का प्रयास कर रहे हैं। इससे आगे बढ़ते हुए मुख्य मुद्दा, संस्थागत सशक्तीकरण को देखते हुए मौद्रिक नीति की भावनाओं का संप्रेषण करने में गति और गुणवत्ता है। आगे के भाग का यही विषय है।

II. मौद्रिक संप्रेषण

मौद्रिक नीति संबंधी ढांचे में हुए इन परिवर्तनों के अनुरूप संप्रेषण सरणियों में सुधार नीति की प्रभावशीलता को बढ़ाने की दृष्टि से समवर्ती उद्देश्य के रूप में शीघ्र ही उभर कर आया। तदनुसार भारतीय रिज़र्व बैंक ने समानांतर रूप से घरेलू वित्तीय बाजार के परिदृश्य के विकास का कार्य हाथ में लिया जिसके क्रम में थे - ब्याज दरों का अपविनियमन, सांविधिक पूर्व-क्रयों को वापस लेना, मौद्रिक राजकोषीय समन्वय में सुधार तथा विदेशी मुद्रा विनिमय तथा भुगतान व्यवस्था में उदारीकरण के साथ-साथ बाजारोन्मुखी विनिमय दर नीति की शुरूआत। भारत में वित्तीय बाजारों के विकास में शामिल था - बाजार के नए घटकों, नए लिखतों की शुरुआत तथा विनियामक पर्यवेक्षण पर तेज ध्यान केंद्रित करना।

भारतीय मुद्रा बाजार 1980 के बाद मध्य दशक तक पर्याप्त रूप से अल्प विकसित था। उसमें संकीर्ण आधार वाले रात्रिभर के घटक का प्राधान्य था, सहभागियों की संख्या सीमित थी तथा ब्याज दरें दिसंबर 1973 से नियंत्रित थीं। 1987 में उधार देने की ओर से सहभागिता को वापस लिया गया तथा बाजार के व्यवस्थित विकास के लिए बाजार निर्माताओं के रूप में संस्थाओं की स्थापना की गई। चुनिंदा संस्थाओं को मीयादी आधार पर मुद्रा बाजार से उधार लेने की अनुमति दी गई तथा 1989 में ब्याज दरों की उच्चतम सीमा को हटा लिया गया। जमाप्रमाणपत्र (सीडी) तथा वाणिज्यिक पत्र (सीपी) जैसी नई लिखतें क्रमशः 1989 और 1990 में शुरू की गई तथा मुद्रा बाजार की लिखतों पर ब्याज दरें क्रमिक रूप से बाजारोन्मुखी हो गई। 1998 में, भारतीय रिज़र्व बैंक ने रात्रिभर के लिए मुद्रा बाजार को पूर्णतः अंतर बैंक मार्केट के रूप में विकसित करने की प्रक्रिया शुरू की। मुद्रा बाजार से गैर बैंकों को बाहर करने के लिए कार्रवाई 2000-05 की अवधि में क्रमबद्ध रूप से की गई। गैर बैंक, सिवाय प्राथमिक व्यापारियों को छोड़कर (जिन्हें रात्रिभर के लिए बाजार में परिचालन करने की अनुमति दी गयी है), अधिकतर नए संपार्श्विक बाजारों में चले गए हैं, जिनका विकास इसके परिणाम स्वरूप किया गया था। गैर बैंक अब निधियों को उधार लेने और देने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक के बाहर संपार्श्विक रेपो

का सहारा ले सकते हैं। एक नवोन्मेषी मुद्राबाजार लिखत के रूप में जिसे संपार्श्विकृत उधार लेने एवं देने का उत्तरदायित्व (सीबीएलओ) की शुरुआत जनवरी 2003 में की गई, जो निवेशकों को गारंटीकृत निपटान के लाभ तथा परिपक्वता से पहले ही निकास का विकल्प उपलब्ध कराती है। संपार्श्विकृत मुद्रा बाजारों में लेनदेनों की मात्रा में काफी वृद्धि हुई हैं। मुद्रा बाजार के विकास के साथ-साथ प्रौद्योगिकीगत उन्नयन भी हुआ है। अभी इसके प्रयास किए जा रहे हैं कि मांग/नोटिस तथा मीयादी मुद्रा बाजारों में स्क्रीन आधारित वार्तातय उद्धृत भावों के आधार पर लेनदेन प्रणाली शुरू की जाए। बाजार सहभागी एक दक्ष और पारदर्शी रूप में चलनिधि की स्थितियों का आकलन कर सकें। इसके लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा रात्रिभर के लिए दरों और मात्राओं की सूचना प्रसारित की जाएगी।

भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार मार्च 1993 में बाजार निर्धारित विनिमय-दरों की ओर चले जाने से तथा 1994 में अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के साथ हुए करार के अनुच्छेद VIII के अंतर्गत चालू खाते की परिवर्तनीयता की ओर ले जाने वाले विभिन्न बाह्य लेनदेनों पर प्रतिबंधों के उदारीकरण के फलस्वरूप व्यापक और गहन हुआ है। 1990 के बाद के दशक के मध्य से बैंकों तथा अन्य प्राधिकृत संस्थाओं को बाजार में परिचालन करने की काफी आजादी दे दी गई है। बैंकों को यह अनुमति दी गई है कि वे अपनी लेनदेन की सीमाएं निर्धारित कर सकते हैं तथा एक निर्दिष्ट सीमा तक विदेशी बाजारों से उधार ले या उनमें निधियां निवेश कर सकते हैं। वे जोखिमों की सुरक्षा के लिए तथा आस्ति-देयता-प्रबंध के प्रयोजनों के लिए व्युत्पन्नी लिखतों का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार, कंपनियों को यह नमनीयता प्रदान की गई है कि वे अपने पिछले कुल कारोबार के आधार पर वायदा कवर बुक कर सकते हैं तथा उन्हें ब्याज दरों और करेंसी स्वैप, केप्स/कॉलर्स तथा वायदा दर करारों जैसी विभिन्न लिखतों का प्रयोग कर सकते हैं। हाल के वर्षों में दीर्घावधि निवेश/ऋण जोखिमों की सुरक्षा के लिए स्वैप बाजार का काफी विकास किया गया है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, संविभागीय निवेश, विदेशों में निवेश जिनमें, प्रत्यक्ष निवेश तथा डिपोजिटरी प्राप्तियां और परिवर्तनीय बांड, विदेशों में भारतीय कंपनी कार्यालयों का खोलना जैसी क्रियाओं सहित पूंजी खाते को उदार बनाने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। हाल के वर्षों में, रिज़र्व बैंक ने विदेशी मुद्रा नियंत्रण संबंधी प्रक्रियाएं बैंकों और प्राधिकृत व्यापारियों को उतनी सीमा तक सौंप दी हैं कि उन्हें किसी अनुमोदन के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक से शायद ही संपर्क करना पड़े। ये सुधार विदेशी मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों में बढ़ी हुई तेज गतिविधियों के रूप में झलकते हैं जिनमें दैनिक कुल कारोबार (अप्रैल 2006 की समाप्ति की स्थिति के अनुसार) 33 बिलियन अमरीकी डालर तक का हो गया है।

सरकारी प्रतिभूति बाजार को 1992 में नीलामी आधारित प्रणाली की ओर ले जाया गया ताकि बेहतर मूल्य की खोज की जा सके तथा परिचालनों में बेहतर पारदर्शिता लाई जा सके। यह प्रमुख संस्थागत बदलाव था, जिसने, मुद्रा और विदेशी मुद्रा बाजार को मुक्त करने के साथ-साथ तथा राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रीकरण को चरणबद्ध रूप में समाप्त किए जाने के साथ आगे आने वाले क्रमिक अपविनियमन के लिए अनुकूल परिवेश का निर्माण किया। 1995 में सरकारी प्रतिभूतियों में लेनदेन के लिए भलीभांति पूंजीकृत प्राथमिक व्यापारियों की स्थापना तथा साथ-ही सरकारी प्रतिभूतियों के लिए सुपुर्दगी बनाम भुगतान प्रणाली, नए ऋण जारी करने के लिए नई तकनीक को अपनाना, नए लिखतों विशेषकर, विभिन्न मीयादों वाले खजाना बिलों की शुरुआत तथा केंद्र सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियों और सभी मीयादों वाले खज़ाना बिलों के लिए अप्रैल 1997 से रिपो प्रणालियों की शुरुआत आदि से इसे समर्थन मिला।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि अप्रैल 1992 से दिनांकित प्रतिभूतियों में केंद्र सरकार का उधार लेने का संपूर्ण कार्यक्रम नीलामियों द्वारा चलाया गया। वर्ष 2005 में, रिज़र्व बैंक ने मूल्य की खोज तथा जोखिमों से निपटने के लिए निपटान प्रक्रियाओं को सुधारने के लिए गुमनाम आदेश मैचिंग प्रणाली स्थापित की गई। प्रतिभूति बाजार में व्यापार को और सक्रिय बनाने तथा उनकी गहनता में सुधार लाने के लिए हाल ही में ''हेन इश्यूड'' मार्केट की भी शुरुआत की गई है। इन सभी उपायों ने उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं तथा एक नई कोषागार संस्कृति विकसित हो रही है, जो ब्याज दरों की मीयादी संरचना के निर्माण में योगदान कर रही है। सरकारी प्रतिभूतियों के लिए मांग सांविधिक चलनिधि अपेक्षाओं की बजाए चलनिधि के प्रभावी प्रबंधन की दृष्टि से अधिक प्रेरित है। चूंकि सरकारी प्रतिभूति बाजार में अभी भी गहनता की कमी है और उसमें बैंकों और वित्तीय संस्थाओं का प्रभुत्व है, अतः यह अकसर चलनिधि के बारे में एक दिशीय निर्धारणों को दर्शाती है अतः सरकारी प्रतिभूतियों की खुदरा धारिता को सुधारने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। सरकारी प्रतिभूति बाजार में, खुदरा सहभागिता को आकर्षित करने के लिए आगे सबसे बड़ा कार्य है एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना जो पर्याप्त प्रतिलाभों और तरलता के साथ, छोटे निवेशकों के लिए एक सुरक्षित और संरक्षित निवेश के अवसर प्रदान करे। इस संदर्भ में, भारतीय रिज़र्व बैंक गैर संस्थागत खुदरा/छोटे निवेशकों के लिए द्वितीय बाजार में लेनदेनों में प्रतिभूतियों के खो जाने या हानियों के जोखिम से निपटने के लिए डीमेट धारिता सुविधा पर जोर दे रहा है। गैर संवेदनशील निवेशकों के लिए प्राथमिक निर्गमों में सीधे पहुँच के लिए जनवरी 2002 से गैर प्रतिस्पर्धी बोली लगाने की प्रथा भी शुरू की गई है।

1947 में आजादी के बाद से ही भारत में कंपनी ऋण बाजार का आस्तित्व विद्यमान रहा है। तथापि यह 1980 के बाद के मध्य दशक से ही ऐसा हुआ कि सरकार द्वारा धारित सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों ने बांड जारी करने शुरू किए। एक भलीभांति कार्य करने वाले द्वितीयक बाजार की अनुपस्थिति में ऐसी ऋण लिखतें अधिकांश निवेशकों में अत्यधिक अतरल

और अलोकप्रिय बनी रहीं। कंपनियां संसाधन जुटाने के लिए सार्वजनिक निर्गमों की बजाए निजी स्थानन को वरीयता देती रहीं। निजी स्थानन का प्राधान्य कई कारणों से रहा अर्थात निजी स्थानन की प्रक्रियाओं और परिचालनों में सरलता, सार्वजनिक निर्गमों की काफी उच्च लागतें, तथा निजी स्थानक के लिए उच्चतर अभिदान। प्राथमिक कंपनी ऋण बाजार में वित्तीय संस्थाएं सार्वजनिक निर्गमों में प्रभुत्व रखने की प्रवृत्ति रखती हैं। कंपनी ऋण के लिए द्वितीय बाजार निर्माण की कमी से प्रभावित रही है, जिसके फलस्वरूप चलनिधि में कमी रही तथा संस्थागत निवेशकों की ओर से प्रतिभूतियों की मीयाद पूरी होने तक रखने की प्रवृत्ति पाई जाती थी जिससे प्रतिभूतियों की बाजार आपूर्ति में कमी हो गई।

कुछ वर्ष पहले भारत में कंपनी ऋण बाजार के रूपांतरण के लिए कई उपाय किए गए हैं। इन उपायों में से कुछ निम्नलिखित हैं - प्रतिभूतियों का डीमैटीकरण तथा इलैक्ट्रोनिक रूप में अंतरण, रोलिंग सैटिलमेंट, संवेदनशील जोखिम प्रबंधन की शुरूआत, तथा व्यापार और निपटान प्रणालियां। 2003 के अंत में, निजी स्थानन बाजार के सुधार के उपाय भी किए गए। इन सभी उपायों से अपेक्षित है कि ये भारत में कंपनी ऋण बाजार की कार्य प्रणाली में सुधार लाएंगे। तथापि, इसे स्वीकार करने की जरूरत है कि सर्वत्र कंपनी बांड बाजार को विकसित करना कठिन रहा है। विश्व का लगभग आधा बांड बाजार अमरीका में है, परंतु योरोपीय बांड बाजार अभी भी विकसनशील है। विकासशील देशों में केवल दक्षिण कोरिया में ही पर्याप्त रूप से विकसित बांड बाजार है। भारत में कंपनी ऋण बाजार में संसाधनों को जुटाने की संभवनाएं हैं, विशेषकर बुनियादी संरचना की परियोजनाओं, आवासीय योजनाओं के लिए और कंपनी तथा नगर निगम की आवश्यकताओं के लिए। उपयुक्त संस्थागत प्रक्रियाएं, दृष्टिबंधन सहित बाजार के विभिन्न घटकों का विकास, ऋण को बढ़ाने के लिए समर्थित प्रतिभूतियां, तथा बांड बीमा संस्थाएं, लागत को कम करने तथा सूचीबद्ध कंपनियों के लिए प्रकटीकरण अपेक्षाओं की पूर्ति, असूचीबद्ध कंपनियों के लिए रेटिंग की अपेक्षाएं, बाजार निर्माण के लिए एक उचित ढांचा, समेकन, व्यापक जन सूचना के लिए प्राथमिक निर्गमों पर केंद्रीकृत आंकड़ा आधार, सूचना के प्रसारण के लिए तत्काल लेनदेन रिपोर्टिंग प्रणाली, आरटीजीएस तक पैठ, तथा अधुनातम प्रौद्योगिकी भारत में कंपनी बांड बाजार के विकास के लिए मजबूत प्रेरणा प्रदान करेंगे।

भारत में वित्तीय बाजारों के विकास में जोर देने का एक प्रमुख क्षेत्र है - लेनदेन, समाशोधन, भुगतान और निपटान के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकीगत बुनियादी संरचना के लिए प्रावधान। 1990 के बाद के दशक के उत्तरार्द्ध से एक आधुनिक, सुदृढ़ भुगतान और निपटान प्रणाली, जो अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के अनुरूप हो, भारतीय रिज़र्व बैंक के एक महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में उभरा है। समेकन, विकास और समन्वय की एक तीन आयामी रणनीति का इस संबंध में अनुसरण किया जा रहा है। समेकन की प्रक्रिया प्रौद्योगिकी के अनधुनातम स्तरों को उपलब्ध कराकर विद्यमान भुगतान प्रणाली को सुदृढ़ करने के चारों ओर घूमती है, विकास के आयाम में शामिल हैं - तत्काल सकल निपटान प्रणाली, केंद्रीकृत निधि प्रबंधन, प्रतिभूति निपटान तथा सांचागत वित्तीय संदेश प्रेषण। बाजार के विकास के प्रौद्योगिकीय संदर्भ में अन्य मुख्य तत्व हैं - इलैक्ट्रॉनिक समाशोधन (1994 में शुरू किया गया), इलैक्ट्रॉनिक निधि अंतरण (1996) मुंबई में केंद्रित त्वरित निधि अंतरण (2003) वार्तातय लेनदेन प्रणाली, (एनडीएस), लेनदेनों की इलैक्ट्रॉनिक रूप में सूचना देने के लिए स्क्रीन आधारित आदेश मैचिंग प्रणाली (2002) तथा सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गम हेतु ऑन लाइन सूचना के प्रसारण तथा बोली लगाने की प्रणाली तथा विदेशी मुद्रा में सरकारी प्रतिभूतियों तथा अन्य ऋण लिखतों में लेनदेनों के समाशोधन और निपटान के लिए प्रौन्नत भारतीय समाशोधन निगम लि. (सीसीआइएल) वित्तीय संस्थाओं तथा प्राथमिक व्यापारियों द्वारा ने अप्रैल 2001 से अपने परिचालन प्रारंभ किए। सीसीआइएल सभी लेनदेनों के लिए एक केंद्रीकृत प्रतिपक्ष के रूप में कार्य करता है तथा अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों को अपनाते हुए प्रतिपक्षी के जोखिमों का समाप्त करते हुए अपने नियमों और विनियमों के माध्यम से निष्पादित लेनदेनों के निपटान की गारंटी लेता है। भुगतान और निपटान प्रक्रिया के ऊपर निगरानी करने का दायित्व राष्ट्रीय भुगतान परिषद तथा भारतीय रिज़र्व बैंक में ही स्थापित भुगतान एवं निपटान प्रणाली बोर्ड को सौंपा गया है।

जैसा कि बाजार तथा दक्ष मौद्रिक नीति के संप्रेषण के लिए संस्थागत ढांचा विकसित करने के लिए किए जाने वाले विभिन्न उपायों के इस संक्षिप्त विवरण से देखा जा सकता है, बाजारों का विकास एक जटिल कार्य है और समय लेने वाली प्रक्रिया है, जिसके लिए सचेत रूप से नीति का निर्माण तथा उसको लागू करने की जरूरत है। बाजार रातोरांत विकसित या कार्य नहीं करने लगते हैं । वे अपने आप कार्य करना प्रारंभ करें इसके लिए पहले उनका निर्माण, पोषण और निरंतर आधार पर उनकी निगरानी करनी पड़ती है।

III. विनिमय दर प्रबंधन

भारत में विनिमय दर प्रबंधन के संचालन में जो व्यवस्थागत परिवर्तन 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में आया उसका मौद्रिक नीति के ढांचे पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। प्रसंगवश, 1990 के बाद का दशक विश्व के कई भागों ने, जिनमें विकसित, विकसनशील और विकासशील देश एक समान रूप से प्रभावित हुए, मुद्रा संबंधी उथल-पुथल तथा संक्रामक वित्तीय संकट के दौरों को भी झेला है। मौद्रिक नीति उत्तरोत्तर जटिल होती चली गई। अधिकांश विकासशील देशों के लिए, जिनमें, एशियाई क्षेत्र भी शामिल हैं, जो निर्यात कार्य-निष्पादन पर निर्भर बना रहा, उपयक्त विनिमय दर का निर्धारण अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें उद्वेगशीलता, रोजगार तथा

उत्पादकता बिक्री-योग्य और गैर बिक्री योग्य गतिविधियों के बीच विभाजन में उतार चढ़ाव की दृष्टि से उल्लेखनीय वास्तविक प्रभाव डालती है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में उद्वेगशीलता को खपाना कठिन होता है। एक भयंकर रूप से प्रतिस्पर्धी व्यापारिक परिवेश में, जहाँ देश भारी रूप में अपने मार्जिनों को दबाते हुए अक्रामक रूप में अपने बाजार अंशों को बढ़ाने का प्रयास करते हैं, वहाँ विनिमय दरों में उद्वेगशीलता पूर्ववर्ती प्रभावों को परवर्ती हानियों में आसानी से बदल देती है। साथ ही रोजगार और आर्थिक कल्याण पर क्षतिकारक संपार्श्विक प्रभाव डालती है। तथापि विदेशी मुद्रा की विनिमय दर के निर्धारक नाटकीय रूप से बदल गए लगते हैं। पहले, वणिक व्यापार के आवागमन में परिवर्तनों से संबंधित कारक तथा वस्तुओं के मूल्य में मुद्रास्फीति संबंधी व्यवहार भलीभांति समझ में आते थे तथा मौद्रिक नीति के संचालन में वे मार्गदर्शन करते थे। इस परिवेश में, मौद्रिक नीति, जो मुख्य रूप से, निम्न मुद्रास्फीति का लक्ष्य लेकर चलती थी, क्रयशक्ति की समानता के अंतर्गत विनिमय दर परिवर्तनों की संगति में थी। समझ के ये परंपरागत आधार पूंजीगत गतिविधियों में परिवर्तनों के कारण दूर चले गए हैं जिसमें मुद्राएं अक्सर परंपरागत आधारों के मेल से काफी हट गई हैं। साथ ही, अब ऐसा लगता है कि पूंजी के प्रवाहों में उतार चढ़ाव के निर्धारण में दिन की खबरों के प्रति अपेक्षाएं तथा यहां तक कि मौद्रिक प्रतिक्रियाएं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई हैं और इसलिए यह विनिमय दरों में उद्वेगशीलता को कई गुना बढ़ा देती हैं।

इसके अलावा, पूंजी प्रवाहों का चलनिधि प्रभाव मौद्रिक प्रबंधन के लिए पहले की अपेक्षा अब अधिक महत्वपूर्ण समस्या हो गई है। वित्तीय बाजारों का वैश्वीकरण, भले ही वह पूर्ण न हुआ हो, किसी एक देश में की गई मौद्रिक नीति संबंधी कार्रवाई का अन्य देशों पर पड़ने वाले प्रभावों को बढ़ा देती है। अभी हाल ही तक अमरीका द्वारा अनुसरण की जा रही नीति संबंधी निभाव का विश्वभर में प्रभाव पड़ता था जिसका शेष विश्व पर यह प्रभाव पड़ता था कि उसके पास प्रचुर चलनिधि होती थी। अमरीका में निम्न ब्याज दरों ने पूंजी को उदीयमान बाजार वाली अर्थव्यवस्थाओं की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारी विदेशी मुद्रा भंडार बन गया तथा एशिया में कई देशों में अत्यधिक देशी चलनिधि फेडरल बैंक के नीति संबंधी जोर को बढ़ा रही है। मौद्रिक और विनिमय दर प्रबंधन के परिवेश को और भी जटिल बनाते हुए अब इस बात के वृद्धिशील प्रमाण हैं कि अनेक देशों में, 1990 के बाद के दशक से विनिमय दर, जो घरेलू मुद्रास्फीति से प्रभावित होती थी, वह प्रभाव अब कम होने की प्रवृत्ति दर्शाती है। मुद्रास्फीति अब विनिमय दरों के प्रति बहुत कम संवेदनशील हो गयी है, परंतु वह विश्व में चारों ओर हो रही मुद्रास्फीति के प्रति संतुलित होने लगी है (मोहन, 2005)।

1990 तक भारत में विद्यमान विनिमय दर प्रणाली को सर्वोत्तम रूप में ऐसा माना जा सकता है जो प्रमुख व्यापार सहभागियों के मुद्रा समूह के प्रति एक दायरे में सांकेतिक स्तर पर समायोजनीय है। 1991 के भुगतान संतुलन के संकट के बाद विनिमय दरों में जुलाई 1991 में दो निम्न स्तरीय समायोजन किए गए तथा मार्च 1993 में बाजार आधारित विनिमय प्रणाली की स्थापना से पहले 11 महीनों की संक्रमण कालीन अवधि में दोहरी विनिमय दर प्रणाली का अनुसरण किया गया। तबसे विनिमय दरें मुख्यतः बाजार में मांग और आपूर्ति की स्थितियों से निर्धारित होती हैं। हाल के वर्षों में विनिमय दर नीति जहां बिना कोई लक्ष्य दर निर्धारित किए या पहले से ही घोषित लक्ष्य या बैंड (दायरा) निर्धारित किए नमनीयता के साथ विनिमय दरों की सावधानीपूर्वक निगरानी और प्रबंधन करने के व्यापक सिद्धांतों से निर्देशित होती है, वहीं बाजार में अंतर्निहित मांग और आपूर्ति की स्थितियों को उन्हें निर्धारित करने की अनुमति देते हुए समय के साथ एक व्यवस्थित रूप में चलने की अनुमति भी देती है। इस प्रमुख उद्देश्य के अंतर्गत विदेशी मुद्रा विनिमय दर नीति अत्यधिक उद्वेगशीलता को कम करने, अस्थिर करने वाली सट्टेबाजी की गतिविधियों को उभरने से रोकने, विदेशी मुद्रा का पर्याप्त भंडार बनाए रखने तथा एक व्यवस्थित विदेशी मुद्रा बाजार विकसित करने के सिद्धांतों से प्रेरित होती है। अन्य विकासशील देशों के बाजारों की भांति भारतीय बाजार, भी अभी बहुत अधिक गहन और व्यापक नहीं हैं, और अलग-अलग अवधियों में अभी भी उसमें मांग या आपूर्ति की स्थितियों में असमानता आ जाती है, ऐसी स्थिति में, भारतीय रिज़र्व बैंक को अपेक्षाकृत एक क्षीण विदेशी मुद्रा बाजार में उछाल भरी मांग और आपूर्ति की स्थिति को सामान्य बनाने की दृष्टि से तथा उसे झटकों के साथ आगे बढ़ने से रोकने के लिए विदेशी मुद्रा की खरीद और बिक्री करने के लिए तैयार किया गया है। फिर भी यह हस्तक्षेप विनिमय दर के किसी पूर्व निर्धारित लक्ष्य या बैंड (दायरे) से संचालित नहीं होता है। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था का विदेशी मुद्रा में लेनदेन का अवसर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ऐसे असामान्य मांगों को कम करने की भूमिका कम होती देखी जा सकती है। जहां किसी देश को अंतरराष्ट्रीय विदेशी मुद्रा बाजारों में होने वाली गतिविधियों से पूर्णतः अप्रभावित रहना संभव नहीं है, सौभाग्य से हम, निरंतर निगरानी और समय पर कार्रवाई करते हुए, और साथ ही स्वतः बढ़ने वाली सट्टेबाजी की गतिविधियों को उभरने से रोकने के लिए जब भी आवश्यक हुए कठोर मौद्रिक उपाय करके एशियाई संकट के प्रभाव को हमारे यहाँ फैलने को न्यूनतम करने में सफल रहे (मोहन, 2005)।

विदेशी मुद्रा विनिमय दर व्यवस्था के चयन के लिए पूंजी प्रवाहों का यह अनुभव महत्वपूर्ण सीख देता है। छोटे-मोटे समाधानों की वकालत, मौद्रिक नीति की स्थायत्तता के बिना एक निश्चित दायरा, मुक्त रूप से सचल विनिमय दरें बनाए रखकर स्वैच्छिक रूप में मौद्रिक संचालन - ये तत्व अब उल्लेखनीय रूप से कम हो रहे हैं। अनुभवों का जोर देश-विशेष की विशेषताओं के अनुकूल तत्काल व्यवस्थाएं करने, विनिमय दरों के स्तर के लिए बिना कोई लक्ष्य रखे तथा बाजार में आए भारी उथल-

पुथल से लड़ने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करने की ओर बढ़ता जा रहा है। आमतौर पर उभरती बाजार वाली अर्थव्यवस्थाओं ने भारी विदेशी मुद्रा भंडार संचित कर लिया है, उन स्थितियों से निपटने के लिए जहाँ दिशा-विहीन सट्टेबाजियां स्वतः प्रेरित हो जाती हैं।

हाल की सूचना यह सुझाती है कि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था का समेकन उत्तरोत्तर मजबूत होता जा रहा है, जिसका निहितार्थ यह है कि भविष्य में विनिमय दर संबंधी नीतियों का संचालन इसी दृष्टि से करना होगा। वस्तुओं में लेनदेन (अर्थात् निर्यात और आयात) सघउ के प्रतिशत के रूप में 1990-91 के 14.6 प्रतिशत से बढ़कर 2004-06 में 28.9 प्रतिशत हो गया, जबकि समग्र चालू खाता घाटा तथा भुगतान सघउ के प्रतिशत के रूप में इसी अवधि में 19.4 प्रतिशत से बढ़कर 45.0 प्रतिशत हो गए जो सेवाओं में उछाल भरे भारतीय व्यापार में वृद्धि को दर्शाते हैं। तदनुसार, पूंजी खाते में सकल प्रवाह (कुल निर्गम और आगम) सघउ के प्रतिशत के रूप दो गुने हो गये हैं, अर्थात् 1990-91 के 12 प्रतिशत की तुलना में 2004-05 में 24 प्रतिशत (167 बिलियन अमरीकी डालर)। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था काफी सीमा तक अंतरराष्ट्रीय (अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ गई है और इसलिए यह अंतरराष्ट्रीय वित्तीय गतिविधियों के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होती है। भारत के भुगतान संतुलन के काफी सुदृढ़ हो जाने की ओर संकेत करने वाले प्रमाण बढ़ रहे हैं जो एक अधिक नमनीय विनिमय दर व्यवस्था की संतुलनकारी विशेषताओं से समन्वित हो रही है। भुगतान संतुलन की हाल की गतिविधियां यह संकेत करती हुई-सी लगती हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था कारोबारी चक्र के विस्तारकारी चरण में प्रवेश कर रही है। इसमें उल्लेखनीय विशेषता यह है कि 2004-05 से चालू खाता घाटा पुनः उभर कर आया है, जबकि इसमें तीन वर्षों तक अधिशेष चल रहा था और इससे पूर्व एक दशक तक सघउ के औसतन एक प्रतिशत का चालू खाता घाटा बना रहा था। तेल के आयात जो कुल आयातों का लगभग एक चौथाई बनता है, ने उच्च वृद्धि दरें दर्शाई, तथा इसने पिछले वर्ष के ऊपर 2004-05 में चालू खाता घाटा बनने में 47 प्रतिशत का योगदान किया। अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल के मूल्यों में बढ़े हुए स्तरों में जो फिलहाल बने हुए हैं, विश्व के सारे देशों को प्रभावित किया और भारत भी इसका अपवाद नहीं रहा है। तेल की उच्च कीमतों के प्रभाव के अलावा 2004-05 और 2005-06 में वणिक व्यापार घाटे में उल्लेखनीय वृद्धि भी तेलेतर माल के आयातों में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण हुई जो पूंजीगत माल, निर्यात से संबद्ध निविष्टियों तथा मध्यवर्ती (अर्धनिर्मित) मालों का एक दायरा इन सभी की आंतरिक वृद्धि से संबद्ध विशेषता है। इसके अलावा, आयातों में भारी विस्तार भी जोरदार निर्यात वृद्धि को बढ़ाने वाला रहा है। इस अर्थ में, वणिक व्यापार घाटे ने भी वृद्धि प्राप्त कर ली है जो इसमें नए आयाम दे रहा है और इस प्रकार यह भारतीय अर्थव्यवस्था की सकारात्मक विशेषता है।

जैसे-जैसे चालू खाता घाटा बढ़ता जाता है और हम फैलते हुए वैश्विक असंतुलनों में मामूली-सा योगदान करते हैं, अतः हमें चालू खाता घाटे को वहनीय मात्रा पर ध्यान देना होगा। यह वहनीयता पूंजी आगमों की अनुमानित स्थिरता पर निर्भर करती है जो इसके फलस्वरूप विदेशी उधार कर्ताओं और निवेशकों द्वारा अर्थव्यवस्था की वृद्धि की संभावनाओं के अनुमानों पर निर्भर होगी। जहाँ यह मान लिया गया है कि एक अधिक खुली अर्थव्यवस्था जिसकी पैठ अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों तक होती है, अधिक उच्चतर चालू खाता घाटे की ओर बढ़ सकती है बनिस्पत उसके जो कम खुली है। इस मुद्दे के प्रति हमारा दृष्टिकोण वित्तीय स्थिरता के हित में उपयुक्त सतर्कता द्वारा पूर्णतः सूचित किया जाएगा। समग्र वृद्धि में तेजी तथा 2004-05 से चालू खाता घाटे को पुनः उभरने के साथ-साथ उच्च स्तर का खुलापन भी आया है। चालू भुगतानों में वृद्धि के साथ-साथ चालू प्राप्तियों - माल और सेवाओं दोनों में, भी स्वस्थ वृद्धि देखी गई है। इस प्रकार यह चालू व्यापार की प्रवृत्तियों और वित्तीय स्थिरता में निर्वहनीयता में कुछ विश्वास को दर्शाता है। चालू प्राप्तियां चालू भुगतानों की लगभग 90 प्रतिशत तक की अदायगी करती है।

चालू प्राप्तियों में वणिक निर्यात तेजी से बढ़ रहे हैं और सॉफ्टवेयर आयों और अनेक प्रकार की कारोबारी सेवाओं में वृद्धि की दृष्टि से वे तेजी से बढ़े हैं। इसके अलावा, निजी अंतरण प्राप्तियों, जिनमें मुख्यतः विदेशों में कम कर रहे भारतीयों द्वारा भेजे गए विप्रेषण भी शामिल हैं, लगता है इन्होंने स्थायी विशेषता प्राप्त कर ली है और हाल के वर्षों में वह तेजी से बढ़कर सघउ के लगभग 3 प्रतिशत की हो गई, जो विनिमय दरों में घटबढ़ से अप्रभावित रही। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तेल के मूल्यों में वृद्धि का परिणाम विशिष्टतया भारत में उच्चतर विप्रेषणों के रूप में होता है, साथ ही अनिवासी जमाराशियों का पूंजी खाते में आगम के रूप में हुआ। जो भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल के मूल्यों के प्रभावों में अस्थिरता को बढ़ाती है। ये कारक भारतीय अर्थव्यवस्था की सक्षमता को सुदृढ़ करते हैं क्योंकि यह गत वर्षों की अपेक्षा अब चालू खातों घाटा के उच्चतर स्तर को वहन कर सकती है। निवल पूंजी प्रवाह नियमित रूप से चालू खाता घाटा की अपेक्षाओं से काफी स्तर तक आगे बढ़ गया है। वास्तव में, 2005-06 के दौरान चालू खाता घाटे के विस्तार ने पूंजी प्रवाहों की शक्ति को ढक दिया है।

पूंजी प्रवाहों के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा अन्य चालू खातों के आगमों में इस बढ़ी हुई भागीदारी के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था एक अनजान क्षेत्र में प्रवेश कर रही है, हालांकि यह सभी दृष्टि से स्वस्थ है। हमने यह पाया है कि विनिमय दर के निर्धारण में व्यापक बाजार का हमारा दृष्टिकोण, लचीलापन, आवश्यक समझी जाने पर हस्तक्षेप करने की हमारी नीति ने अब तक अच्छा काम किया है। जैसा हम आगे बढ़ते हैं, हमें विश्वास का अनुभव होता है कि भविष्य में भी हम इसी दिशा

में बढ़ते रहेंगे। साथ ही वांछनीय होने पर कोई भी परिवर्तन करने के लिए परिस्थिति की निरंतर निगरानी करते रहेंगे।

IV. परिवर्तनों से निपटना

हाल की गतिविधियों ने भारत में तथा शेष विश्व में मौद्रिक नीति के संचालन तथा विनिमय दर के प्रबंधन के लिए भारी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। जहाँ विश्व सघउ की वृद्धि दर 3.8 प्रतिशत की दीर्घावधिक औसत दर से ऊपर है, वहीं भारी सर्वांगी आघातों की घटनाएं बढ़ रही हैं। हालांकि तेल आघातों की स्थिति में भी मूल्यों की स्थिरता बनाए रखी गई है, फिर भी तेल मूल्यों में वृद्धियाँ भौगोलिक तनावों, चालू खाता असंतुलनों के अव्यवस्थित तथा त्वरित रूप में समायोजन की संभाव्यता तथा आवास-बाजार की ओर से उठने वाले जोखिम, विशेष कर जब चक्र धूम कर नीचे आता है, के दूसरे अनुवर्ती प्रभावों के रूप में जोखिमें अभी भी ऊपर लटके हुए हैं। निकट भविष्य में तेल अर्थव्यवस्था का दृष्टिकोण उच्चतर मूल्यों तथा उच्चतर उद्वेगशीलता के पक्ष की ओर झुकता-सा लगता है। सारे विश्व में बढ़ती ब्याज दरों तथा वैश्विक वित्तीय बाजारों में पर्याप्त चलनिधि के परिवेश में 2005 के दौरान वैश्विक असंतुलन और बढ़ा है। अमरीका का चालू खाता घाटा 800 बिलियन अमरीकी डालर से भी ज्यादा हो गया है, जो अन्यत्र विशेषकर योरोप, पूर्व एशिया और तेल-निर्यातक देशों द्वारा इतना ही अधिशेष द्वारा संतुलित किया गया है। जहाँ यह घाटा अभी भी बढ़ रहा है, वहीं अधिशेष का स्थान हाल ही में बदलता हुआ लग रहा है। मध्य एशिया के तेल निर्यातक देशों के चालू खाता अधिशेष उदीयमान एशिया के चालू खाता अधिशेष के बराबर हैं। तेल निर्यातक देशों के संयुक्त चालू खाता अधिशेष के एक तिहाई से कम उनके विदेशी मुद्रा भंडार में झलकता है, जिसमें 2005 में लगभग 90 बिलियन अमरीकी डालर की वृद्धि हुई है। इस बात के संकेत हैं कि अधिशेष तेल को अधिक विशाखीकृत रूप में नियोजित किया गया है, नई निवेश एजेंसियों और तेल स्थिरीकरण निधियों के माध्यम से, जिसे बैंक जमा राशियों से इतर आस्तियों में निवेश किया जा सकता था। विश्व अर्थव्यवस्था में उपर्युक्त प्रवृत्ति वाली वृद्धि के परिवेश में, जिसमें अधिकांश देशों में वित्तीय बाजारों में निम्न उद्वेगशीलता तथा बैंकिंग प्रणाली में सुदृढ़ लाभप्रदता हो, निवेशक 2005 में अपेक्षाकृत उच्च मूल्यों पर जोखिमभरी आस्तियां खरीदने के लिए तैयार कर लिए गए थे। भारी समुच्चयों, व्युत्पन्नी लिखत (डेरिवेटिव्स) जैसी उन्नत बाजार लिखतों तथा हेज फंड जैसे खिलाड़ियों की उपस्थिति के उभरने से विनियामकों के लिए जोखिम भरे क्षेत्रों की निगरानी करना कठिन हो गया था। इस परिवेश में, आस्ति मूल्यों में कोई उद्वेगशील और अप्रत्याशित परिवर्तन वित्तीय अस्थिरता के साधन हो गए होते। वित्तीय प्रणाली में विश्वास बनाए रखने के लिए, यह आवश्यक है कि संक्रमण के माध्यम से आघातों को फैलने से रोका जाए।

उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्थाओं की ओर निजी पूंजी के प्रवाह 2005 में बढ़े हैं। बाजार तक पहुंच अनुकूल रही और बाह्य वित्तपोषण की लागतों में तेजी से गिरावट आई। उदीयमान बाजारों तथा निम्न क्रेडिट रेटिंग वाली कंपनियों, जो 1997 से अपनी निम्नतम स्तरों पर रहीं द्वारा बांड निर्गमों पर निम्न स्तरों की ऋण का प्रसार रहा। आंशिक रूप से उधार लेने की इन अत्यधिक अनुकूल स्थितियों के परिणाम स्वरूप उदीयमान बाजार वाले अधिकाधिक देश अपनी खुद की मुद्राओं में दीर्घकालीन ऋण जारी करने में समर्थ हुए और इस प्रकार विदेशी मुद्रा के ऋण जोखिम और रोल ओवर जोखिम को कम कर सके। प्रमुख केंद्रीय बैंकों में से, यूएसए फेडरल रिज़र्व ने अपनी नीति दर को 16 अवसरों पर बढ़ाया और जून 2004 के 1.0 प्रतिशत से प्रत्येक अवसर पर इसे 25 आधार बिंदुओं से बढ़ाकर मई 2006 तक 5.0 प्रतिशत कर दिया। ईसीबी और बैंक ऑफ इंग्लैंड आगामी महीनों में नीतिगत दर को बढ़ाने की सोच रहे हैं।

इन स्थितियों के अंतर्गत मध्यावधिक परिदृश्य की दृष्टि से मौद्रिक और विनिमय दर प्रबंधन से निपटते समय विदेशी मुद्रा बाजार के व्यवहार के कुछ रूढ़िगत पहलुओं को ध्यान में रखने की जरूरत है। प्रथम, विदेशी मुद्रा बाजारों में अल्पावधि के लिए दैनिक विनिमय दरों की घटबढ़ का या किसी देश द्वारा अपने भुगतान सम्बंधी दायित्वों को पूरा करने से जिनमें ऋणों पर ब्याज की चुकौतियां भी शामिल हैं, तथा कथित 'बुनियादी तत्वों' के साथ कुछ लेना-देना नहीं है। दूसरे, अंतरबैंक गतिविधि को देखते हुए जो विदेशी मुद्रा बाजारों में गति निर्धारित करती है, 'सकल' की दृष्टि से लेनदेन की मात्राएं कई गुना ऊंची हैं, तथा 'निवल' आगम की तुलना में अधिक भिन्न-भिन्न स्वरूप की हैं। तीसरे, विकासशील देशों में आमतौर पर छोटे और एक स्थान पर केंद्रित विदेशी मुद्रा बाजार होते हैं, जहाँ, घरेलू मुद्रा के अंकित मूल्यों में प्रायः ह्रासमान प्रवृत्ति दर्शाने की अपेक्षा की जाती है, विशेषकर यदि तुलनात्मक मुद्रास्फीति की दरें प्रमुख औद्योगिक देशों में विद्यमान मुद्रास्फीति की दरों से उच्चतर हों। इस स्थिति में, बाजार सहभागियों में प्रायः यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे विदेशी मुद्राओं को लम्बे समय तक रखते हैं, और उस समय बिक्री को रोक देते हैं जब अपेक्षाएं प्रतिकूल हों और करेंसियों में मूल्यह्रास हो रहा हो। परंतु जब करेंसियों में मूल्य वृद्धि हो रही हो और अपेक्षाएं अनुकूल हों तो वे उन्हें बेचने लगते हैं। हाल के वर्षों में विदेशी मुद्रा की विनिमय दर की प्रवृत्तियां, मुद्रास्फीति में अंतरों के विद्यमान रहने के बावजूद अधिक मिली-जुली रही हैं। इसके फलस्वरूप, हम भी इन व्यावहारगत प्रवृत्तियों में परिवर्तन को देख रहे हैं। चौथे, निर्यातकों/आयातकों तथा अन्य अंतिम उपयोगकर्ताओं में पाई जाने वाली यह प्रवृत्ति कि वे बिना उपयुक्त जोखिम प्रबंध की रणनीतियां अपनाए, प्रतिलाभ के स्रोत के रूप में, विदेशी मुद्रा की विनिमय दरों में घटबढ़ की ओर देखते हैं (आपके लिए) कभी-कभी आसामान्य मांग और आपूर्ति की स्थितियों में असमान प्रवृत्तियां बन जाती हैं। जो

अक्सर 'खबरों और विचारों' पर आधारित होते हैं। एक स्वतः वहनीय त्रिकोण, मांग आपूर्ति विसंगति, इसका लाभ लेने के लिए बढ़ी हुई अंतरबैंक गतिविधि तथा नकारात्मक भावनाओं से उत्पन्न बढ़ी हुई उद्वेगशीलता जो बुनियादी तत्वों के अनुकूल नहीं है - को गतिशील बनाया जा सकता है, जिसके लिए प्राधिकारियों द्वारा त्वरित हस्तक्षेप/ या प्रतिक्रिया करने की जरूरत होगी।

इस पृष्ठभूमि में, भारत की विनिमय दर नीति जिसमें बिना कोई निश्चित दर का लक्ष्य रखे और एक व्यवस्थित रूप में अंतर्निहित मांग और आपूर्ति की स्थितियों को विनिमय दर की गतिविधियों को निर्धारित करने की अनुमति देते हुए काफी समय से उद्वेगशीलता के प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित करने की नीति समय की कसौटी पर खरी उतरी है। अनेक अप्रत्याशित बाह्य और घरेलू गतिविधियों के बावजूद, भारत की बाह्य स्थिति संतोषजनक बनी हुई है। हमारे अनुभव ने भी अप्रत्याशित आकस्मिकताओं, उद्वेगशील पूंजीगत आगमों/निर्गमों तथा ऐसी अन्य गतिविधियों से निपटने के लिए विदेशी मुद्रा भण्डार के संचयन की महत्ता को रेखांकित किया है, जो हमारी प्रत्याशाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है, क्योंकि उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं को बाह्य सेवाओं की अनिवार्यता (या संक्रमण) की स्थिति में अधिकांशतः अपने ही संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसी कोई ''अंतिम उधारदाता'' संस्था नहीं है जो स्वीकार्य शर्तों पर अल्पसूचना पर अतिरिक्त चलनिधि उपलब्ध करा सके। इस प्रकार पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार की जरूरत समाप्त होने या कम होने की संभावना नहीं है, तब भी जब विदेशी मुद्रा विनिमय दरों को मुक्त रूप से चलने की अनुमति दी गई हो।

हाल के वर्षों में भारत के विदेशी मुद्रा भंडार के प्रबंधन का समग्र दृष्टिकोण भुगतान संतुलन की बदलती संरचना में प्रदर्शित हुआ है और इसने विभिन्न प्रकार के पूंजी प्रवाहों तथा अन्य अपेक्षाओं से जुड़े 'चलनिधि जोखिमों' को दर्शाने का प्रयास किया है। इस प्रकार विदेशी मुद्रा भंडार के प्रबंधन की नीति अनेक पहचाने जाने योग्य कारकों तथा अन्य आकस्मिकताओं पर यथोचित रूप से बनी है। इन कारकों में अन्य बातों के साथ-साथ शामिल हैं - चालू खाता घाटा का आकार/अल्पावधिक देयताओं का आकार (जिनमें दीर्घावधि ऋणों पर वर्तमान चुकौती दायित्व भी शामिल हैं), निवेश संविभागों में तथा अन्य प्रकार के पूंजी प्रवाहों में संभावित विविधता, भुगतान-संतुलनों पर बाह्य आघातों से उठने वाले अप्रत्याशित दबाव, तथा अनिवासी भारतीयों की प्रत्यावर्तनीय विदेशी मुद्रा में घटबढ़ । इन कारकों को हिसाब में लेते हुए, भारत का विदेशी मुद्रा भंडार - अब पर्याप्त सुविधाजनक है, हालांकि इस नीति का दीर्घावधि आधार पर अनुसरण करने विदेशी पूंजी के निर्बाध आगमों, ऐसे आगमों का अभीष्टतम निष्प्रभावीकरण, उपयुक्त लिखत तथा निष्प्रभावीकरण की लागत तथा उससे जुड़ी चलनिधि प्रबंधन की पृष्ठभूमि में ऐसी रणनीति की निर्वाहनीयता के मुद्दे को उठाया है। वस्तुतः भारी और उद्वेगशील पूंजी प्रवाहों के संदर्भ में मौद्रिक नीति का संचालन तथा प्रबंधन अनेक देशों के लिए कठिन सिद्ध हुआ है।

परिवर्तन की इन व्यापक हवाओं के बीच भारत एक प्रमुख मुद्दे का सामना कर रहा है, वह है - मौद्रिक नीतिगत ढांचे तथा परिचालनगत प्रक्रियाओं के अनुरूप चलनिधि प्रबंधन के लिए मिश्रित लिखतों की नीति बनाना। इस संदर्भ में निष्प्रभावीकरण तथा चलनिधि प्रबंधन में भारत का अनुभव एशिया में कुछ अन्य केंद्रीय बैंकों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की तुलना में कुछ अनोखा है। उदाहरण के लिए इंडोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, फिलीपीन, तथा थाईलैंड में सभी केंद्रीय बैंकों ने अलग-अलग तरीकों से पूंजी आगमों को निष्प्रभावी किया। बैंक ऑफ इंडोनेशिया ने अपनी खुद की प्रतिभूतियां जारी करके खुले बाजार के परिचालन लागू किए और अपने बजटीय परिचालनों का प्रबंधन इस प्रकार किया जिससे बैंक ऑफ इंडोनेशिया के पास भारी जमाराशियां संचित हो गई। जबकि बैंक ऑफ थाईलैंड ने खुले बाजार के परिचालन पूंजी आगमों को निष्प्रभावी करने के लिए किए, बैंक ऑफ कोरिया द्वारा, जिसने बाद में घरेलू ऋण को मंदा करने के लिए परिमाणात्मक नियंत्रण बट्टाकरण की नीतियों का प्रयोग किया था, केंद्रीय बैंक की प्रतिभूतियों (बिलों) का उपयोग किया। बैंक नगारा मलेशिया ने, ऐतिहासिक रूप से मौद्रिक चलनिधि को प्रभावित करने के लिए केंद्रीय बैंक के पास सरकारी तथा अन्य जमाराशियों को नियोजित किया। दूसरी ओर चीन ने प्रारक्षित अपेक्षाओं, बैंकों की पूंजी के शक्ति के आधार पर बैंकों के लिए विभेदक विवेक-सम्मत व्यवस्थाओं जैसी अन्य लिखतों का प्रयोग करने के अलावा, केंद्रीय बैंक के बिलों को जारी करके पूंजी आगमों को निष्प्रभावी किया।

भारतीय संदर्भ में, पूंजी प्रवाहों में तेजी से बदलाव हुए हैं और इसलिए चलनिधि में भी जो 2001-06 की अवधि में देखा जा सकता है और जिसकी व्याख्या, आंशिक रूप से संघर्षजन्य, और जो मौसमी और अस्थायी कारकों से उत्पन्न होने वाला तथा आंशिक चक्रीय, जो वृद्धि की गति में आई तेजी से जुड़ा है और जिसने बैंक ऋण के लिए मांग में वृद्धि को प्रेरित किया, के रूप में की जा सकती है। इसने बाजार दरों में व्यापक उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने तथा मौद्रिक नीतिगत जोर के अनुरूप यथोचित स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त मौद्रिक परिचालनों की मांग की। वस्तुतः भारतीय अनुभव बाहरी क्षेत्र के प्रबंधन के साथ घरेलू क्षेत्र के मौद्रिक प्रबंधन के बीच घनिष्ठ संपर्क का उदाहरण प्रस्तुत करता है। शेष विश्व के लिए पूंजी प्रवाहों में जो कुछ छोटी-मोटी गतिविधियां हो सकती हैं, वे ही घरेलू चलनिधि में भारी गतिविधियों में बदल सकती हैं जो किसी विकासशील देश में बाजार की विनिमय दरों और ब्याज दरों को विकृत कर सकती हैं । इसके अलावा बाह्य बचतों को खपाना भी उन कारोबारी चक्रों की स्थिति पर निर्भर है जिनसे कोई देश गुजर रहा है। हमारे मामले-में, इस दशक के प्रारंभिक वर्षों में निम्न औद्योगिक वृद्धि देखी गई, अतः देश की खपत

क्षमता सीमित थी। जैसे ही हम विस्तारवादी चरण में पहुँचे, चालू खाता व्यापक हो गया तथा भारी खपत की सक्षमता भी अपने आप कई गुनी बढ़ गई। जिस प्रकार विदेशी मुद्रा भण्डार बाह्य मोर्चे पर एक आघात को झेलने वाले कारक के रूप में कार्य करता है उसी प्रकार हमें घरेलू मौद्रिक प्रबंधन के लिए एक समानान्तर आघात को झेलने वाले कारक की तलाश करनी पड़ी।

इस संदर्भ में, एक नई लिखत, जिसे बाजार स्थिरीकरण योजना (एमएसएस) का नाम दिया गया, खुले बाजार के परिचालनों के बनाए रखने के लिए मौद्रिक नीति की एक उपयुक्त लिखत के रूप में विकसित हो चुकी है। उक्त योजना अप्रैल 2004 से शुरू की गई। इस योजना के अंतर्गत, जो पूर्णतः चलनिधि के प्रबंधन के लिए है, रिज़र्व बैंक को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह सरकारी खज़ाना बिल तथा मध्यम अवधि वाली दिनांकित प्रतिभूतियां चलनिधि की खपत के प्रयोजन के लिए जारी कर सकता है। यह योजना इस रूप में काम करती है कि इसके अंतर्गत खज़ाना बिलों और सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामियों से प्राप्त राशि को जब्त करके एक अलग एमएसएस नकदी खाते में रखा जाता है तथा इसका परिचालन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है। एमएसएस नकदी खाते में जमा हुए धन का उपयोग केवल एमएसएस के अंतर्गत जारी खज़ाना बिलों और/अथवा दिनांकित प्रतिभूतियों की चुकौती और/या वापस खरीद के लिए किया जाता है। एमएसएस प्रतिभूतियों को सामान्य खज़ाना बिलों तथा सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों को उधारदाता के हाथों में एक समान माना जाता है। एमएसएस पर ब्याज के भुगतान या बट्टे एमएसएस खाते से नहीं किए जाते, परंतु उन्हें केंद्रीय बजट तथा अन्य संबंधित दस्तावेजों में पारदर्शी रूप में एक अलग घटक के रूप में एक अलग उपशीर्ष के अंतर्गत दर्शाया जाता है।एमएसएस की शुरुआत सैद्धांतिक रूप से सफल रही है जिससे एलएएफ अपने दैनिक चलनिधि के प्रबंधन के उदिष्ट कार्य को करती रहे। अप्रैल 2004 में अपनी शुरुआत से एमएसएस ने मध्यम अवधि के लिए मौद्रिक और चलनिधि के प्रबंधन के एक बहुत ही उपयोगी लिखत के रूप में कार्य किया है। इसे निम्न पूंजी आगमों और भारी निधियों की जरूरत के समय खोल दिया जाता है तथा जब अतिशेष पूंजी प्रवाह अतिरिक्त घरेलू चलनिधि की ओर ले जाती है तो इसमें संचय किया जाता है।

आगे चलकर, प्रभावी मौद्रिक प्रबंधन तथा अल्पावधिक ब्याज दर को सुचारु बनाने के लिए चलनिधि प्रबंधन की एक रणनीति के रूप में अपनाने की निरंतर जरूरत होगी। यह मुद्दा पूंजी प्रवाहों के और मुक्त किए जाने की व्यवस्था में और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है। हमारे देशों में मौद्रिक और विनियम दर नीतियों के संचालन का निर्धारण करने में वैश्विक गतिविधियों के बढ़ी हुई भूमिका अदा करने की उम्मीद है। वैश्विक अभिमुखीकरण के परिवेश में मौद्रिक नीतियों की स्वतंत्रता को बनाए रखना उत्तरोत्तर कठिन हो सकता है, जो लक्ष्यों और लिखतों की दृष्टि से कठोर विकल्पों' की मांग करेंगी।

V. एशिया में वित्तीय समेकन : कुछ मुद्दे

बढ़ते हुए वैश्वीकरण के युग में मौद्रिक नीति और विनिमय दर ढांचों की चर्चा केवल इन्हीं को लेकर नहीं की जा सकती। अतः यह प्रासंगिक होगा कि एशियाई आर्थिक सहयोग के संदर्भ में भारतीय अनुभव का उदाहरण रखा जाए। हाल के वर्षों में एशियाई क्षेत्र में समेकन की सरणियों का विस्तार देखा गया है, जो मुख्य रूप से सुदृढ़ व्यापक आर्थिक कार्य-निष्पादन पर बनाया गया है। एशिया विश्व के सघउ के 30 प्रतिशत से अधिक का उत्पाद करता है तथा आधी वैश्विक वृद्धि का योगदान करता है। जब एशियाई विकास बैंक ने 2004 में इस क्षेत्र के लिए 7.3 प्रतिशत की समग्र सघउ की वृद्धि बताई थी तो वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक में अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष ने वर्ष 2005 के लिए भी उभरती एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के लिए 7.3 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया था। कुछ एशियाई देशों में 2004 और 2005 के दौरान स्फीतिकारी दबाव देखे गए, परंतु उच्च वृद्धि तथा तेल-मूल्यों के संदर्भ में संतुलित थे। उभरते एशिया की सघउ वृद्धि भारी निर्यात वृद्धि और सुदृढ़ घरेलू मांग से प्रेरित थी। हाल के वर्षों में निरंतर बनी रही तेज वृद्धि तथा बढ़ते हुए जीवन मानदंडों के साथ-साथ विश्व निर्यातों और कच्चे माल की खपत में एशियाई अंश में भारी वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि विश्व अर्थव्यवस्था में एशिया की भूमिका पर वैश्वीकरण का प्रमुख प्रभाव पड़ा है क्योंकि वैश्विक स्तर पर बढ़ते हुए प्रतिस्पर्धी बेहतर स्थिति के चलते उत्पादन और व्यापार की संरचना में निरंतर रूपांतरण हो रहे हैं। विशेषकर, अपेक्षाकृत उच्च वेतन लागत वाली अर्थव्यवस्थाएं इस क्षेत्र के अंतर्गत उच्चतर मूल्यवर्धन वाले उत्पादों और सेवाओं की ओर बढ़ रही हैं। इसके अलावा, क्षेत्र के अंदर वित्तीय प्रवाह अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं, जो बचतों को एशिया में ही खपाने और उन्हें विश्व के अन्य भागों को भेजने में मध्यस्थन का कार्य कर रहे हैं। अपनी गतिशील और कुशल कार्मिक शक्ति के साथ एशिया के उभरते बाजार विश्व अर्थव्यवस्था में वृद्धि के प्रमुख इंजन बनने के लिए नई प्रौद्योगिक का लाभ उठाने में तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में उपलब्ध अवसरों को पकड़ने के लिए अच्छी स्थिति में हैं। सुदृढ़ आर्थिक कार्य-निष्पादन के साथ-साथ विदेशी मुद्रा का संचयन भी हुआ है, ताकि बाह्य आघातों के विरूद्ध खड़े रहने की शक्ति बनाई जा सके (भा.रि.बैं. 2006)।

जैसा कि एशियाई क्षेत्र विकसित हो चुका है, एशिया के बीच व्यापार ने गति पकड़ ली है, जिससे इस क्षेत्र में और उच्चतर आर्थिक समेकन हो सकता है। इसमें एशियान की उपस्थिति ने सहायता की है, जो क्रमिक रूप से अपने सदस्य देशों के बीच व्यापार की बाधाओं को कम कर रहा है। चूंकि एशियान क्षेत्र विकसित हो चुका है, तथा उसके विश्वास में वृद्धि हुई है, अतः जापान, चीन, और कोरिया जैसे अधिक विकसित देशों के साथ उसके व्यापार संपर्कों में भी गहनता आई है, और साथ ही इस क्षेत्र के अंदर ही पीटीए और एफटीए के निर्माण की दिशा में और

अधिक क्रमिक चर्चाएं हो रही हैं। जहां यह व्यापार समेकन वर्षों से गहन हुआ है, वहीं वित्तीय समेकन में प्रगति सीमित ही रही है। यह समझा जा सकता है कि इस क्षेत्र में देखे गए आर्थिक समेकन की मात्रा के अनुरूप क्रमिक वित्तीय समेकन की सम्भवनाओं और उसके स्वरूप पर अधिकाधिक चर्चाएं हो रही हैं।

हालांकि एशिया में वित्तीय समेकन शायद व्यापार समेकन से पीछे रह गया है, फिर भी इस मोर्चे पर की गई पहलें, मजबूत हो रही हैं। पूर्वी एशिया में केंद्रीय बैंकों के बीच 2000 का चिआंग माई करार में स्वैप के नेटवर्क के माध्यम से एशिया में केंद्रीय बैंक सहयोग को औपचारिक रूप प्रदान किया गया। अन्य क्षेत्रों में इससे दो समानांतर आंदोलन चले एक दक्षिण एशिया में सार्क पहले के रूप में तथा दूसरा पूर्व एशिया में जो एशियान + 3 की पहल को दर्शाता है। संकट के समय एक सक्षम सुरक्षा-नेट प्रदान करने के लिए एक समेकित प्रणाली बनाने का विचार काफी मजबूती से उत्पन्न हुआ। अभी हाल ही में, एशियाई करेंसियों के बीच उद्वेगशीलता से बचने के लिए तथा विश्व की प्रमुख मुद्राओं में से एक एशियाई करेंसी यूनिट अपनाने पर कुछ चर्चा हुई है । इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण होगा कि पहले सिद्धांतों पर चर्चा की जाए।

दक्षिण पूर्व तथा पूर्व एशिया के साथ भारत के संबंध बढ़ रहे हैं। भारत के कुल निर्यातों में विकासशील एशिया के लिए निर्यातों का अंश 1990-91 के 14 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में लगभग 30 प्रतिशत हो गया है। भारत के निर्यातों में भी इस क्षेत्र का तदनुरूपी अंश इसी अवधि में 14 प्रतिशत से बढ़कर 21 प्रतिशत हो गया। हाल के वर्षों में चीन भारत का प्रमुख व्यापार सहभागी बनकर उभरा है जिसका अंश 2005-06 में कुल निर्यातों में 6.0 प्रतिशत और कुल आयातों में 7.4 प्रतिशत बैठता है। शेष एशिया के साथ आर्थिक संबंधों के इस विस्तार को मान्यता देते हुए यहां पिछले साल हुई प्रथम आइएमएफ -एमएएस सेमिनार में गवर्नर या.वे.रेड्डी द्वारा की गई घोषणा के अनुसार हमने पहले ही छह देशों के नई वास्तविक प्रभावी विनिमय दर (आरइइआर) सूचकांक की गणना को लागू कर दिया है। यह नया सूचकांक दो नई करेंसियों की शुरुआत करता है, रेमनिम्बी तथा हांगकांग डॉलर ताकि वे पूर्ववर्ती करेंसी समूह को समर्थन दे सकें जिसमें शामिल हैं - अमरीकी डालर, पौंड स्टर्लिंग, यूरो तथा जापानी येन (रेड्डी, 2005)।

एशियाई संकट के बाद की अवधि में अनेक एशियाई अर्थव्यवस्थाओं ने अलग-अलग प्रकार की मध्यवर्ती विनिमय दरें व्यवस्थाएं अपनाई हैं, जिनमें पहले की अपेक्षा अधिक लचीली विनिमय दरों के प्रति अधिकाधिक वरीयता बढ़ती जा रही है। इस संबंध में, मुख्य मुद्दा यह है कि ऐसी नमनीयता को किस सीमा तक इष्टतम माना जाए? विनिमय दरों के प्रबंधन के लिए क्या लिखते हैं ? इस संबंध में विदेशी मुद्रा भंडार द्वारा उपलब्ध कराई गई बीमा के उस इष्टतम स्तर को मानना तथा उसका पुनर्आकलन करना भी जरूरी हैं जो संभावित रूप से उद्वेगशील और व्यवधानकारी पूंजी प्रवाहों के विरूद्ध आवश्यक है। अंतिम, अत्यधिक अनिश्चितता के इस माहौल में तेल मूल्यों में हाल ही में आई ऊर्ध्वमुखी गतिविधियां देश विशेष के कारकों के कारण अलग-अलग तरह की प्रतिक्रियाएं जगा सकती हैं। यही स्थिति है जिसके कारण इस क्षेत्र में समेकन के लिखत का व्यावहारिक चयन क्षेत्रीय व्यापार करार रहा है जिसे सर्वोत्तम रूप में आत्म-हित की प्रबुद्ध अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। क्षेत्रीयता की ओर बढ़ने का यह प्रयास इस बढ़ती हुई सहमति से और स्पष्ट हो गया है कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ाने के लिए अतिव्याप्ति पूर्ण धन संपत्ति में समन्वित कार्रवाई और विश्वास की जरूरत है। भारत से अपने एशियाई पड़ौसियों के साथ विभिन्न क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग, मुक्त/वरीयता प्राप्त व्यापार करार तथा द्विपक्षीय निवेश संधियां भी की हैं।

अन्य क्षेत्रीय ब्लाकों से अनुभव तथा सीख लेते हुए किसी मिली जुली करेंसी यूनिट के अंतर्गत यथा परिकल्पित सहकारी मौद्रिक व्यवस्थाओं के सफलतापूर्वक संचालन के लिए कुछ मुद्दों के अस्तित्व को मानना महत्वपूर्ण है। जहां अमरीका में केंद्रित ट्रेडिंग ब्लाक के संदर्भ में एक मुद्रा (करेंसी) ने भली भांति कार्य किया है, वहीं योरोप में मौद्रिक और आर्थिक समेकन के हाल के अनुभवों से भी सीख ली जा सकती है। योरोपीय मौद्रिक समेकन का इतिहास 1958 में योरोपीय आर्थिक समुदाय (ईईसी) नाम के ट्रेडिंग ब्लाक के गठन तक जाता है। जिसने 1979 में सदस्य दशों के बीच लचीली (उठती-गिरती) विनिमय दर के दायरे के साथ योरोपीय मुद्रा प्रणाली (ईएमएस) का रूपाकार ग्रहण किया। वर्तमान में इसमें 12 देश शामिल हैं जिसमें एक मिला-जुला यूरो क्षेत्र (मोनिटरी यूनियन) आता है। हालांकि योरोपीय यूनियन में 25 देश इसके सदस्य देश हैं। ईयू के कुछ सदस्य देश निर्धारित चार व्यापक एकाभिमुखी मानदंडों को पूरा करते हुए यूरो क्षेत्र के भाग लेने का सक्रियतापूर्वक प्रयास कर रहे हैं। यूरो क्षेत्र में मौद्रिक यूनियन का उदेश्य मौद्रिक संधि में स्पष्ट रूप से पारिभाषित किया गया है तथा योरोपीय केंद्रीय बैंक का मुख्य उदेश्य यूरो क्षेत्र में मूल्य स्थिरता को बनाए रखना है । योरोपीय केंद्रीय बैंक द्वारा मूल्य स्थिरता की परिभाषा '' मुद्रास्फीति की निम्न परंतु मध्यावधि मीयाद की दर से 2 प्रतिशत के आसपास बनी रहने'' के रूप में की गई है। यह समेकन अधिकांशतः एक ऐसे संस्थागत ढांचे द्वारा सुविधाजनक बनाया गया जो 40 से अधिक वर्षों में विकसित हुआ है।

यह नोट करना उपयोगी होगा कि अमेरिका में, जिसे स्वयं एक बड़े करेंसी क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है, एकल करेंसी कार्य इसलिए करती है क्योंकि इन सभी क्षेत्रों में श्रमिकों को आने जाने की स्थिति है तथा क्षेत्रों में तथा क्षेत्रों के बीच वेतन और मूल्य की नमनीयता विद्यमान है । अर्थात् वास्तविक कारकों के कारण जो वास्तविक प्रभावी विनिमय दर तथा दीर्घावधिक प्रतिस्पर्धात्मकता का निर्धारण करते हैं; दूसरी ओर योरोप में, एकल मुद्रा

की शुरुआत को कुछ विरोधों का सामना करना पड़ा जो भाषाई और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण था। श्रमिक संघ अमरीका की अपेक्षा यूरोप में अधिक शक्तिशाली हैं जो ''वास्तविक वेतन'' को अनाकर्षक बना देती है। इसके अलावा उत्पाद बाजार की प्रतिस्पर्धा कम गहन है। योरोपीय उत्पादक अक्सर मजदूरी लागतों को उच्चतर मूल्यों के रूप में उपभोक्ताओं पर डाल देते हैं। इन कारकों को दर्शाते हुए यूरोपीय देशों में बेरोजगारी अमेरिका की अपेक्षा अधिक स्थायी स्वरूप की है। निष्कर्ष रूप में यह कहना पर्याप्त होगा कि निर्णायक गण अभी भी एक मिली जुली करेंसी रखने के गुणों पर विचार कर रहे हैं क्योंकि यह किसी अर्थव्यवस्था को वास्तविक क्षेत्र के परिवर्तनों के साथ समायोजित करने की नमनीयता को कम कर देती है जैसाकि योरोप के मामले में देखा जा रहा है। परिणामस्वरूप यह एक करेंसी यूनियन के अंदर विभिन्न देशों के बीच करेंसी के विभिन्न अतिमूल्यन/निम्न मूल्यन के रूप में विभेद पैदा कर सकती है और प्रभावित देशों की दीर्घावधिक प्रतिस्पर्धात्मकता के क्षरण की संभावना रहती है।

यूरो क्षेत्र की तुलना में, एशियाई क्षेत्र आर्थिक संरचना, विकास के चरणों, जनसंख्यागत विशेषताओं, सामाजिक और राजनैतिक प्रणालियों और यहां तक कि उत्पादन कारकों, विशेषकर, श्रमिकों की निम्न गतिशीलता में कहीं अधिक स्पष्ट विविधता है। किसी करेंसी क्षेत्र का सफलतापूर्वक परिचालन उन सभी क्षेत्रों में वेतन के लचीलेपन तथा श्रमिकों की गतिशीलता पर निर्भर है। एक साझी बाह्य विनिमय दर, एक विशेष क्षेत्र के लिए ''विनिमय दर'' में प्रभावी आंतरिक नमनीयता शेष करेंसी क्षेत्र की तुलना में यथा आवश्यक निम्नतर या उच्चतर मजदूरी द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इसके बाद श्रमिक गतिशीलता द्वारा संतुलनता प्राप्त की जा सकती है जो इन अंतर्क्षेत्रीय मजदूरी अंतरों के प्रति प्रतिक्रिया करती है। इसके अलावा, जैसा कि योरोप में देखा गया है मौद्रिक मानदंडों को लागू करके सभी देशों में राजकोषीय स्थितियों में एक रूपता प्रभावी क्षेत्रवार मौद्रिक नीति के लिए वांछनीय है। एशियाई देशों के बीच महत्तर मौद्रिक और विनिमय दर सहयोग की दिशा में किए गए किसी भी प्रयास के लिए यह जरूरी होगा कि इन कठिन मुद्दों की तरफ स्पष्ट ध्यान दिया जाए।

इस बीच इसमें कोई संदेह नहीं है कि महत्तर वित्तीय सहयोग, जो महत्तर व्यापार को सुविधाजनक बनाने की ओर ले जाता है, और एशियाई देशों के बीच महत्तर पूंजी बाजार के संपर्कों को बढ़ाता है, सही दिशा में किया गया प्रयास होगा। चूंकि एशियाई देशों में चालू खाता अधिशेषों और घाटों की विद्यमानता की दृष्टि से काफी भिन्नताएं हैं, बांड बाजारों, लेनदेन तथा निपटान प्रणालियों आदि का विकास अधिशेष वाले देशों को उसी क्षेत्र के घाटे वाले देशों में निवेश करने में समर्थ बनाएगा। इस प्रकार एशियाई बचतों में यह संभावना होगी कि वे उसी क्षेत्र के अंदर वृद्धि को बढ़ाने के लिए उपयोग में लाई जाएं।

VI. निष्कर्ष

एशिया के आसपास के केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग समेकन के लिए एक व्यापक आधार वाले शासनादेश के पोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाला है। इसका प्रमाण यह रहा है कि यह साझे/मिले-जुले हितों वाले विभिन्न विषयों पर विचारों और सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायता करता है। केंद्रीय बैंकों के सहयोग ने 1994 के मेक्सिको संकट का समाधान करने में सहायता की । अभी हाल ही में तथा केंद्रीय बैंक के सहयोग का अभीष्टतम रूप 1998 में प्राप्त किया गया जब यूरोपीय केंद्रीय बैंक (ईसीबी) का गठन किया गया, जिसके पास इसके अपने 11 सदस्य देशों के बीच मौद्रिक नीति के ऊपर पूर्ण अधिकार है, तथा जनवरी 1999 में एक नई साझी मुद्रा बनाई गई है। दूसरी ओर, कुछ विशेषज्ञों के अनुसार, केंद्रीय बैंकों का सहयोग एक नैतिक संकट की ओर ले जाता है और इसलिए अन्यथा दक्ष बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दरों, व्यापार प्रवाहों तथा बाजार की शक्तियों द्वारा सामान्य कार्यकलापों में हस्तक्षेप किया जाता है।

इतना सब कुछ होते हुए भी, हमारे क्षेत्र के संदर्भ में, केंद्रीय बैंक का सहयोग अपरिहार्य है। वस्तुतः परिवहन और संचार में सुधारों, अर्थव्यवस्था के परिचालनों तथा बढ़ी हुई संस्थागत व्यवस्थाओं पर वैश्विक दृष्टि में कुछ समानता के चलते केंद्रीय बैंक सहयोग काफी व्यापक रूप से बढ़ा है। वैश्विक समेकन की बढ़ी हुई मात्रा तथा पूंजी के आवागमनों में उदारीकरण हमारे क्षेत्र में केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग बढ़ाने के लिए एक प्रधान कारक के रूप में कार्य करेगा। इसके अलावा, विश्व भर में तथा क्षेत्र के अंदर बढ़ते हुए वित्तीय और व्यापार के समेकन का प्रमुख निहितार्थ है - घरेलू घटकों के संबंध में वैश्विक घटकों के प्रति मौद्रिक नीति और विनिमय दरप्रबंधन की महत्तर संवेदनशीलता जो व्यापक आर्थिक प्रबंधन में बढ़े हुए समन्वय की मांग करती है। प्रत्याशित लाभों तथा एक बड़े क्षेत्र में किसी देश के आर्थिक समेकन की लागतों को एक खुले आर्थिक ढांचे में संभावित आघातों को झेलने की अर्थव्यवस्था की शक्ति के संदर्भ में देखा जाना है। अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों में उद्वेगशीलता की उपस्थिति में आर्थिक सहयोग से लाभ उठाने की किसी देश की योग्यता अंततः इसके अपने व्यापक आर्थिक ढांचे और संस्थाओं की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

संदर्भ :

अहलुवालिया, मोंटेक सिंह, या.वे.रेड्डी तथा एस.एस.तारापोर (संकलन) (2002): मेक्रोइकानामिक्स एंड मोनिटरी पालिसी : इश्यूज फॉर ए रिफोर्मिंग इकॉनामी; ऑक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली ।

भारत सरकार (2005), रिपोर्ट ऑफ हाई लेवल एक्सपर्ट कमेटी ऑन कारपोरेट बांड्स एंड सिक्योरेटाइजेशन, नई दिल्ली।

मोहन, राकेश (2004) - ''वैश्विक संदर्भ में मौद्रिक नीति के लिए चुनौतियां'' सेंट्रल बैंक ऑफ श्री लंका, कोलम्बो, श्रीलंका में सेंट्रल बैंकिंग स्टडीज के 22 वे वार्षिक व्याख्यान में प्रस्तुत लेख, भा.रि.बैं. बुलेटिन, जनवरी 2005।

____(2005) ''समकालीन मौद्रिक नीति के लिए कुछ स्पष्ट पहेलियां'' चीन और भारत की बदलती हुई आर्थिक संरचनाएं : घरेलू और क्षेत्रीय निहितार्थ पर सम्मेलन में प्रस्तुत आलेख, बीजिंग चीन, भा.रि.बैं. बुलेटिन, दिसंबर ।

रेड्डी, या.वे. (2005) ''एशिया में मौद्रिक सहयोग'' में ''एशियाई समेकन'' पर आइएमएफ - एमएएस उच्चस्तरीय सेमिनार, सिंगापुर में दिया गया व्याख्यान, भा.रि.बैं.बुलेटिन।

भारतीय रिज़र्व बैंक (2006) ''एशिया में क्षेत्रीय सहयोग'' ''एशिया में केंद्रीय बैंकों के बीच क्षेत्रीय सहयोग पर कार्यदल की बैठक में क्वालालम्पुर, मलेशिया में प्रस्तुत लेख।